



भगवान महावीर का साधक जीवन समता, सहिष्णुता और संतुलन का जीवन रहा है। उन्होंने अपने पुरुषार्थ को अन्तर्दृष्टि जगाने और आत्मलीन होने में नियोजित किया। ज्यों ही उनके चरण साधना के पथ पर अग्रसर हुए, त्यों ही विभिन्न अवरोधक शक्तियां सक्रिय हो गईं। अवरोध उत्पन्न करने वाले तिर्यच भी थे, मनुष्य भी थे, देव, यक्ष और राक्षस भी थे।

संगम, शूलपाणि और कटपूतना व्यन्तरी के द्वारा दिए गए उपसर्गों को सुनकर जनसाधारण सिहर उठता है और दुर्बल धृति वाले लोग महावीर की तितिक्षा पर प्रश्नचिह्न भी उपस्थित कर सकते हैं। पर महावीर महावीर थे। महान साधक थे। जितना महान साधक, उतनी बड़ी कसौटी।

अरहंते सरणं पवज्जामि

साध्वी मोहनां (श्रीङ्गारगढ)



जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं

प्रकाशक : जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनू-३४१३०६

जिला : नागौर (राज.)

फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१

ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनू

प्रथम संस्करण : २००३

द्वितीय संस्करण : २०१३

मूल्य : ₹30 (तीस रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर फोन : ०२६४-२४१८४८२

अर्हम्
आशीर्वचन

‘अरहंते सरणं पवज्जामि’ यह नाम रहस्यपूर्ण है। अर्हत् की शरण में आने का अर्थ है—अपने अर्हत् भाव को प्रकट करना। अव्यक्त को व्यक्त करने के लिए जो साधन चाहिए उसका दिशा-निर्देश शरण शब्द में मिलता है। साध्वी मोहनांजी ने भगवान महावीर के कुछ जीवन प्रसंगों को लेकर अर्हत् की शरण में चरणविन्यास किया है। यह अर्हता की दिशा में प्रस्थान है।

भावना से निकले शब्द पाठक के मन को भी प्राञ्जल बनाने में सक्षम हो सकेंगे।

५ जुलाई २००१
बीदासर

आचार्य महाप्रज्ञ

अहंम्
संदेश

भगवान महावीर का जीवन-चरित्र अध्यात्म की जीवंत कहानी है। उसे पढ़ कर सहिष्णुता, ध्यानशीलता और ज्ञानशीलता की प्रेरणा ली जा सकती है। साध्वी मोहनांजी 'श्रीडूंगरगढ़' ने प्रभु महावीर के जीवन के कुछ अंशों को काव्य विधा में प्रस्तुत किया है। साध्वीजी प्रगतिशील बनी रहें। प्रस्तुत कृति 'अरहंते सरणं पवज्जामि' पाठकों के दिलो-दिमाग को आंदोलित करे। मंगलकामना।

२१ नवम्बर २००१
बीदासर

युवाचार्य महाश्रमण

संदेश

भगवान महावीर का छब्बीससौवां जन्म कल्याणक वर्ष चल रहा है। इस वर्ष महावीर को केन्द्र में रखकर अनेक रचनात्मक और आयोजनात्मक उपक्रम हुए हैं तथा हो रहे हैं।

भगवान महावीर के विषय में साहित्यिक कृतियों का निर्माण एक रचनात्मक उपक्रम है। साध्वी मोहनांजी काव्यरसिक साध्वी हैं। उन्होंने भगवान महावीर के प्रेरक जीवन प्रसंगों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है। 'अरहंते सरणं पवज्जामि' पुस्तक से पाठक भगवान महावीर की शरण स्वीकार करने की प्रेरणा ग्रहण करे, यही इस सृजन की सार्थकता है।

१८ नवम्बर २००१
बीदासर

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

ॐ

अपनी कलम से.....

भगवान महावीर का साधक जीवन समता, सहिष्णुता और संतुलन का जीवन रहा है। उन्होंने अपने पुरुषार्थ को अन्तर्दृष्टि जगाने और आत्मलीन होने में नियोजित किया। ज्यों ही उनके चरण साधना के पथ पर अग्रसर हुए, त्यों ही विभिन्न अवरोधक शक्तियां सक्रिय हो गईं। अवरोध उत्पन्न करने वाले तिर्यच भी थे, मनुष्य भी थे, देव, यक्ष और राक्षस भी थे।

१. पेढाल गांव के पोलास चैत्य में भगवान महावीर कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े थे, उन पर धूल-वृष्टि हुई।
२. तीक्ष्ण मुँह वाली चींटियां उन्हें काटती रही।
३. मच्छरों के दंशों से शरीर लहलुहान हो गया।
४. दीमकों का दल उनके शरीर पर उमड़ पड़ा।
५. बिच्छू, सांप, नेवले, हाथी, बाघ और चूहों ने भी उन्हें बहुत सताया।
६. वज्रभूमि और सुम्हभूमि में उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला।
७. वहां के लोग छू-छू कर कुत्तों को उनके पीछे लगा देते।
८. वे (कुत्ते) लाठी से भी डरने वाले नहीं थे। भगवान के पास तो न लाठी होती, न नलिका।
९. कुछ अज्ञानी लोग भगवान पर थूक देते।

१०. ग्वाले ने उनके कानों में (आर-पार) कील ठोक दी।
११. कभी उन पर मुष्टि और ढेले के प्रहार हुए तो कभी हड्डियों और भाले से भी प्रहार हुए।
१२. कभी किसी ने धक्का दिया तो कभी किसी ने उनकी आँखों में धूल फेंक दी।
१३. उनके पैरों पर खीर भी पकाई गई।
१४. संगम, शूलपाणि और कटपूतना व्यन्तरी के द्वारा दिए गए उपसर्गों को सुन कर जन-साधारण सिहर उठता है और दुर्बल धृति वाले लोग महावीर की तितिक्षा पर प्रश्नचिह्न भी उपस्थित कर सकते हैं। पर महावीर महावीर थे। महान साधक थे। जितना महान साधक, उतनी बड़ी कसौटी। अधिक ऊँचाई पर चढ़ने के लिए विशाल ऊर्जा-भण्डार भी चाहिए। वह महावीर के पास था। ध्यानप्रकोष्ठ में स्थित महावीर मानो 'निरपेक्ष शून्य' (Absolute Zero) की स्थिति में पहुँच गए। पूर्ण 'निर्वात' (Vaccum) अवस्था को प्राप्त हो गए।

महावीर की साधना की अखण्ड ज्योति, उनके हृदय की पवित्रता और चिन्तन की निर्मलता शिखर के समीप पहुँच रही थी। कोई भी परीषह उन्हें विचलित करने में समर्थ नहीं था। कोई भी उपसर्ग उन्हें आकुल नहीं कर सकता था। परिस्थिति और भय उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते थे। वे समता और सहिष्णुता के अधिष्ठान बन गए थे।

चमरेन्द्र ने देखा—मेरे पीछे शक्र का वज्र आ रहा है। उसे अपने बचाव का कोई मार्ग नहीं सूझा। तत्काल वह अपने शरीर को संकुचित कर भगवान के चरणों के नीचे छिप गया। अब शक्र और शक्र का आयुध उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते थे।

ईस्वी सन् १९९४ में गंगानगर वर्षावास। वहां मनमोहनजी जैन एडवोकेट के यहां से श्री वीरेन्द्रकुमार जैन द्वारा लिखित 'अनुत्तर योगी

महावीर' पुनः पढ़ने को मिला। उसमें प्रस्तुत प्रकरण बहुत आकर्षक, रोचक और मनोरम लगा। काव्यमय टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचने का प्रयास किया, जिसे 'अरहंते सरणं पवज्जामि' के नाम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

परम श्रद्धेय आचार्यवर, युवाचार्यवर तथा साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने इस लघुकृति के लिए अपना अमूल्य संदेश प्रदान कर इस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है, यह उनकी महान अनुकम्पा है। मैं इस कृपा के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करूं, ऐसा शब्द मुझे अभी तक किसी शब्दकोष में मिला नहीं है।

हिसार

साध्वी मोहनां (श्रीडूंगरगढ़)

७ सितम्बर २००१

अरहंते सरणं पवज्जामि



खड़े सम्राटों के सम्राट,
लिए व्यक्तित्व अखंड विराट ।
आत्म-शोधन का व्रत अक्षीण,
ध्यान में पूर्णतया तल्लीन ॥
गगन से भी निर्मल, निर्लेप,
वासना का न कहीं विक्षेप ।
साधना चलती सर्वांगीण,
आवरण होते प्रतिपल क्षीण ॥
पूर्ण शशधर से शीतल, कान्त,
मुखाकृति शोभन, भव्य, प्रशान्त ।
अहिंसा के अप्रतिम प्रतीक,
परीषह सहते हैं निर्भीक ॥

* * *

पुरों में उत्तम पुर संसुमार,
जहां स्थित हैं सिद्धार्थ कुमार ।
पूर्वकृत पौरजनों के पुण्य,
उदित हैं—लिये सघन नैपुण्य ॥

* * *

धरा के लिए एक वरदान,
 सुशोभित है—अशोक उद्यान ।
 चहकते हैं खग भाव-विभोर,
 नाचते छत्र तान कर मोर ॥
 प्रकृति का देख नृत्य निर्बन्ध,
 बांटता फिरता पवन सुगन्ध ।
 दिशाओं में अपूर्व उल्लास,
 मुग्ध करता अंबर का हास ॥
 विपिन में घूम-घूम सर्वत्र,
 मक्खियां करती मधु एकत्र ।
 जिसे है संचय से अनुरक्ति,
 इभ्य होता प्रायः वह व्यक्ति ।
 देख छवि पुष्पों की अम्लान,
 पुलक उठते हैं मूर्च्छित प्राण ॥

* * *

हिमालय से भी उच्च, महान,
 आत्म-रत हैं भावी भगवान ।
 उदधि से भी गहरे, गंभीर,
 प्रणत हैं महावीथि पर वीर ।
 अनाविल अन्तस् हीनतरंग,
 बाह्य, आभ्यन्तर हैं निस्संग ॥

* * *

चमरचंचा है नगरी खास,
 जहां पर करते असुर निवास ।
 लोक कहलाता वह पाताल,
 नहीं पर इन्द्र वहां इस काल ॥

* * *



धनीश्वर पूरण नामक एक,
 हुआ जिसको यह भावोद्रेक ।
 प्रव्रज्या 'दानामा' स्वीकार,
 करूं मैं पालन उचित प्रकार ॥
 काष्ठ से निर्मित पात्र-विशेष,
 चार खंडों में बांट अशेष ।
 जीविका का निर्वाहक मात्र,
 लिया है कर में भिक्षा-पात्र ॥

* * *
 खंड पहले में प्राप्त प्रसाद,
 वितरता पथिकों को साहाद ।
 दूसरे की रोटी या दाल,
 श्वान, कौओं को देता डाल ॥
 तीसरे में उपलब्ध पदार्थ
 मछलियों, कूर्मों के अशनार्थ ।
 चतुर्थ में जो मिल जाता अन्न,
 उसे खा लेता परम प्रसन्न ॥

* * *

किया करता दो दिन उपवास,
तीसरे दिन लेता कुछ ग्रास ।
चला यह क्रम वर्षों पर्यन्त,
आ गया निकट जान कर अन्त-
वासनाओं का कर परिहार,
लिया अनशन-व्रत उसने धार ।
काल के अवसर करके काल
हुआ चमरेन्द्र, समृद्धि विशाल ॥



किया उसने ऊपर दृक्पात
शक्र का देखा सुख-संघात ।
ऋद्धि का कोई आर न पार
अमर-परिषद है अपरम्पार ॥
इधर से उठती हर्ष-तरंग
पहुँच जाती वह उधर अभंग ।

पूर्व का अपरिमेय आनन्द
 न होता पश्चिमांत तक मंद ॥
 धनद का मोद वर्णनातीत,
 पलक सम होता वर्ष प्रतीत ।
 और दक्षिण का हास-विलास ?
 न होता मर्त्यों को विश्वास ॥
 देवगण खड़े जोड़ कर हाथ
 विहँसते देख उन्हें सुरनाथ ।
 वाद्य बजते हैं विविध प्रकार
 प्रफुल्लित सुरपति का आकार ॥
 सुधास्रावी सुन कर संगान
 पुरन्दर के मुख पर मुस्कान ।
 असंभव सौरभ का उल्लेख
 नहीं चमरेन्द्र सका यह देख ॥

* * *



अरहंते सरणं पवज्जामि

१७

बुला अन्तर परिषद तत्काल
उठाया प्रश्न ठोंक कर ताल ।
अमावस की निशि का अवतार
कौन बैठा यह मूढ़, गँवार ?

* * *

किए हैं मेरे ऊपर पांव
सुहाती मुझे न इसकी छांव ।
इसे देना ही होगा दण्ड
करूंगा अहंकार शतखण्ड ॥

* * *

मुझे लगता यह राक्षस, क्रूर
दर्प कर दूंगा पल में चूर ।
विकट कंटक-सा है उपहास
आ गया इसका निकट विनाश ॥
क्रिया है संकट को आह्वान
पंख है चींटी का अवसान ।
क्रिये हैं मैंने भी सत्कर्म,
चाहिए आनी इसको शर्म ।
मुझे भी मिली शक्ति भरपूर
दर्प कर दूंगा पल में चूर ॥

* * *

रहा मदान्ध-सा मुझको घूर,
दर्प कर दूंगा इसका चूर ।

* * *

दिखा दूंगा मैं ऐसी रात,
न होगा जिसका कभी प्रभात ।
क्षुद्र को होता बड़ा घमण्ड
करूंगा आज उसे शतखण्ड ॥

* * *

खोलकर असुरो, अपना मौन
बताओ — दुष्ट, दैत्य यह कौन ?
अनलगिरि-सा फूटा है क्रोध
रहूंगा लेकर मैं प्रतिशोध ॥
मुस्कराहट जायेगा भूल
हो गया विधि इसके प्रतिकूल ॥

* * *

चमर फिर बोला भ्रुकुटी तान
मुझे यह सका नहीं पहचान ?
सिंहासन मेरे ऊपर ढाल
अकड़ कर बैठा है यह व्याल ॥
खोल कर असुरो, अपना मौन
बताओ — दुष्ट, दैत्य यह कौन ?

* * *



असुरगण अञ्जलिबद्ध, विनीत
 झुके हैं सबके शीष पुनीत ।
 कहा - जय हो, मंगल हो देव
 समर्पित हैं हम सब स्वयमेव ॥
 चमरचंचा के स्वामी आप
 आपका है अक्षुण्ण प्रताप ।
 आपकी सुन वीरोचित बात
 हुई गर्वानुभूति प्रतिभात
 किन्तु इनकी है शक्ति अपार
 कीर्ति का जलनिधि-सा विस्तार ।
 सुधर्म सुरालय के ये ईश
 प्रतापी अमर झुकाते शीश ।
 पराक्रम के हैं भाण्डागार
 विभव के आगे नत संसार ॥

* * *

शत्रु है इतना सबल समर्थ
 मुझे बतलाने का क्या अर्थ ?
 यहां से हटो सभी चुपचाप
 बात करना है तुमसे पाप ॥

* * *

कहा असुरों ने फिर कर जोड़-
 मियां की है मस्जिद तक दौड़ ।
 निवेदन मात्र हमारा कार्य
 करेंगे चिन्तन इस पर आर्य ॥

* * *



चमरेन्द्र को न आवश्यकता चिन्तन की
करके ही रहता है वह अपने मन की।
जो मैंने पाया अद्भुत बल, विक्रम है
मैं तुम्हें दिखा दूंगा उसका कुछ क्रम है॥
असुरो, तुम अपनी तर्क वितर्क छोड़ो
जो कुछ भी करूं—उसी से सहमति जोड़ो।
सेवक की होती शाश्वत-सी मर्यादा
स्वामी के सम्मुख कभी न बोले ज्यादा॥
वैरी की यों बढ-चढ गाते गुण-गाथा
झुक जाता क्यों न शर्म से नीचे माथा?
मैं फिर कहता हूं—चले यहां से जाओ
उस प्रतिपक्षी का नाम न मुझे सुनाओ।

* * *

वह सह न सकेगा मेरे कोपानल को
मैं अभी देख लूंगा उसके भुजबल को।
सत्ता-सिंहासनच्युत उसको कर दूंगा
उसका हर पथ अंगारों से भर दूंगा॥

* * *

निस्संशय पटक पछाडूंगा पल भर में
सुन लेंगे लोक धमाका बैठे घर में।
यदि मेरा पुण्य-प्रताप जान तुम लेते,
तो इतना अतिशय भरा न परिचय देते॥

* * *

बाहर-बाहर बनता प्रकाश का घेरा,
रहता दीपक के तले परन्तु अंधेरा।
अच्छी लगती घर की न सुधा की प्याली
घृतपूर्ण दीखती सदा पराई थाली॥

* * *

सहयोग लिया करता वह-जो कायर है
सहयोग चाहिए उसे - जिसे कुछ डर है।
इसका विध्वंस करूंगा अभी अकेला
असुरो, मुझको न चाहिए कोई चेला॥

* * *

श्री, सुषमा हर कर इसे परास्त करूंगा
वैभवमय जीवन का सूर्यास्त करूंगा
सुर-असुर-राज्य की सीमा एक करूंगा
मैं नई व्यवस्था का अभिषेक करूंगा॥

* * *

दोनों लोकों का मैं ही इन्द्र रहूंगा
सब वही करेंगे-जो मैं उन्हें कहूंगा।
देवालय तक स्थापित होगी प्रभु-सत्ता
इंगित के बिना न हिल पायेगा पत्ता॥

* * *

मेरे से बढ़ कर कोई हुआ न होगा
शक्रासन कभी किसी ने छुआ न होगा।
सुर होंगे सेवक, मैं होऊंगा स्वामी
स्वामित्व-सुखों का ज्ञाता, अन्तर्यामी॥

* * *



यों कह कर करता हुआ प्रहार पवन पर
आक्रमण हेतु सन्नद्ध हो गया हरि पर।
अपने दांतों से अपने होंठ चबाता
रोषारुण आँखों से स्फुलिंग बरसाता
धम-धम करता आयुधशाला में आया
क्रोधोद्धत शस्त्र-रत्न झट 'परिघ' उठाया ॥

* * *

विकराल रूप जब विपदा कभी दिखाती
तो छाती की धड़कन पहले बढ़ जाती।
भय व्याप्त अकारण ही हो जाता मन में
अस्थिरता का भी अनुभव होता तन में ॥
अन्तस् में हुई चमर के घबराहट-सी,
आने आवाज लगी श्रुति में खट-खट-सी।
गहराया कल्पित भीति-तमस् मानस में,
असमंजसता की स्थिति उभरी नस-नस में ॥

* * *



ये सभी असुर हैं मेरे बहुत हितार्थी
लग रहा न कोई भी विद्रोही, स्वार्थी।
कितना आग्रह? कितना अनुरोध किया है,
पर मैंने इनका उग्र विरोध किया है॥
आत्मीय जनों से जो भी वैर बढ़ता
कु-समय में वह असहाय स्वयं को पाता।
अपनत्व प्रायशः होता स्वार्थ-सहित है
पर इनकी बातों में कुछ तथ्य निहित है॥
दो योद्धाओं ने की है कभी लड़ाई
तो किसी एक ने सदा पराजय पाई।
मुझसे भी अधिक शक्र निकला बलशाली
मेरे दुर्दान्त प्रहार गए यदि खाली।
उन विकट क्षणों में कौन बनेगा त्राता?
जिसकी हो चरण-शरण सुख-शांति प्रदाता॥
हो गया परास्त अगर मैं उसके द्वारा
तब मुझे मिलेगा किसका कहां सहारा?

* * *



जब भौतिक बल हो जाता म्लान, ग्लान है
अध्यात्म-शक्ति तब देती समाधान है।
जो सूरज से ज्यादा हो पुण्य-प्रतापी
जिसकी महिमा जाए न किसी से मापी।
तप, संयम से भावित जिसका जीवन हो,
अध्यात्म-ज्योति से आप्लावित कण-कण हो ॥
जिसका जीवन निर्मल हो गंगाजल-सा
जो धूप-छांव में खिला रहे शतदल-सा ॥
जिसके चिन्तन में है—अपना न पराया
जिसने दीनों-हीनों को गले लगाया।
दुर्भेद्य दम्भ-प्राचीरें जिसने तोड़ी
अपनी लय अपनी ही आत्मा से जोड़ी ॥
जो समता का सागर, सुख-दुख में सम है
जो ग्रन्थि-विभेदन में समर्थ, सक्षम है,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥

जिसके अन्तस्तल में आवेश नहीं है
कोई अन्तर्विग्रह, संक्लेश नहीं है,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा,
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
ले जिसकी चरण-शरण तर जाते पापी
वंचक, हत्यारे, स्वार्थी, नीच, प्रलापी,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
जो जग में रह कर भी जग से है न्यारा
पथ-भ्रष्ट व्यक्ति के लिए बना ध्रुवतारा,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
निष्कलुष मोद में जो निशिदिन रहता है
संतप्त विश्व पर निर्झर बन बहता है,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
उडुपति-ज्योत्स्ना-सी है जिसकी उज्ज्वलता
जो मरु-प्रदेश में भी सुरतरु-सा फलता,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
जिसके चरणों में सुर-नर करते वन्दन
जो है त्रिभुवन का एक मात्र आलम्बन,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥
जो अप्रमत्त साधक है इन्द्रिय-जेता
दिग्भ्रान्त मूढ़ को भी संरक्षण देता,
उस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा
तो सम्भावित संकट-सागर तर लूंगा ॥

जो देवराज से अधिक शक्तिशाली है
कु-समय में कर सकता जो रखवाली है।
नरपुंगव ऐसा कौन? कहां पर पाऊं?
वह जहां कहीं है, वहीं पहुँच मैं जाऊं॥

* * *

सहजात ज्ञान से चारों ओर निहारा
दुविधाओं के अम्बुधि का मिला किनारा —



सम्पूर्ण विश्व में भरत-क्षेत्र विश्रुत है
पुर संसुमार का वन अशोक अद्भुत है॥
कर कायोत्सर्ग वहां श्री वीर खड़े हैं
पूर्वार्जित बन्धन जिससे शिथिल पड़े हैं।
मस्तक के ऊपर तरु अशोक छाया है
सिद्धार्थपुत्र की देवोपम काया है॥
पांवों के नीचे शिलापट्ट उज्ज्वल है
उत्सर्जित होती प्रतिपल प्रभा धवल है।

युग-नयनों में उन्मेष-निमेष नहीं है
अस्थिरता का कोई परिवेश नहीं है॥

* * *

तप चौविहार स्वीकार किया है तेला
दुस्साध्य भिक्षु-प्रतिमा को भी सह झेला।
प्रतिमा साधन साधक की कड़ी कसौटी
प्रतिमा साधन चढ़ना हिमगिरि की चोटी॥
साधना काल है एक रात्रि का केवल
पर निर्णायक होते इसके अंतिम पल।
जो शूरवीर इस पथ पर बढ़ता जाता
असिधारा-पथचारी वह मंजिल पाता॥
उपसर्गों से विचलित हो जाने वाला
फिर किसी शक्ति से जाता नहीं सँभाला।
जितनी ऊँचाई से जो नीचे गिरता
वह उतनी अधिक आपदाओं से घिरता॥
उन्माद-ग्रस्त मन, अस्त-व्यस्त हो जाता
आतंकित रहता अथवा रोग सताता।
केवली-प्ररूपित प्राप्त धर्म को खोता
मझधारों में वह अपनी नाव डुबोता॥

* * *

प्राकृतिक परीक्षा में जो खरा उतरता
सुर-नरकृत उत्पातों से कभी न डरता।
आसुरी शक्तियों के घनघोर परीषह
हँस-हँस सह लेता है उत्पीड़न दुस्सह॥
उपलब्धि उसे तब होती सुखद, सुहानी
बन जाता निस्संदेह अतीन्द्रिय ज्ञानी।
उपजता अवधि, मनपर्यव या केवल है
आवरण-वलय छूट जाने का यह फल है॥

* * *

इस महासाधना में श्री वीर निरत हैं
ध्यानी-मुद्रा में अन्तर्दर्शन-रत हैं
सुर-सुरेन्द्र, नर-नरेन्द्र चरणों में झुकते
शरणागत के दुख-संकट सारे चुकते ॥

* * *

हो सकता है बचाव त्रिशलानन्दन से
आश्वस्त हुआ असुराधिप इस चिन्तन से।



धारण कर देवदूष्य, निज परिघ उठाया
तप-लीन वीर को वन्दन करने आया ॥
करबद्ध किया सविनय प्रणिपात सविधि है
संकटमोचक भयहारी यह सन्निधि है।
अपने मुख से अपना मन्तव्य बताया—
हे देव, चाहता इन चरणों की छाया ॥
इन चरणों का आश्रय सुख-सिद्धि प्रदाता
घनघोर आपदाओं में अविकल त्राता।

यह मेरे लिए सुरक्षा-कवच सुहाना
मैंने तो इसे अभेद्य ढाल है माना ॥

* * *

प्रभु आप जलाशय हैं शीतल जलधारी
बक, हंस सभी जल पीने के अधिकारी।
प्रभु, आप गभीर, अतलदर्शी सागर हैं
पर सीप और मोती दोनों का घर हैं ॥
प्रभु निरभ्र नभ — जिसमें रहता ध्रुवतारा
पर राहु-केतु का वास कहीं क्या न्यारा?
प्रभु सुरभित सुमन — सुमन-मधुप जिन पर मँडराते
पर कांटे क्या न कलेजे में छिप जाते?
प्रभु को उपमित करते धरणी से जन हैं
सज्जन-दुर्जन दोनों के जहां भवन हैं।
सबको सहती है, सबको नीर पिलाती
अपने अमृतसावी फल-फूल खिलाती ॥

* * *



प्रभु, विज्ञप्रवर, समदर्शी, अन्तर्यामी
मैंने भी ली है—शरण आपकी स्वामी!
सुरपति बैठा है सिर पर पांव पसारे
यह मुझसे सहा नहीं जाता प्रभु प्यारे॥
यह मर्मन्तुद, हड़कम्पी पीड़ा हर दो
मेरे पर इतनी-सी करुणा प्रभु कर दो।
सम्प्रति असाध्य-साधन करने मैं जाता
इसलिए आपकी पद-रज शीष चढ़ाता॥
भवदीय नाम की साक्षी से करता प्रण
कर दूंगा शोभा-भ्रष्ट शक्र को तत्क्षण।
हे नाथ, आपके जो भी हुए पुजारी
उन सबके आप रहे हैं संकटहारी॥
मेरी भी मनोकामना पूरी कर दो।
हो आराधना अवन्ध्य, मुझे यह वर दो॥

* * *



विकराल, विरूप राक्षसी आकृति धारी
 उठ चला प्रभंजन-सा बन प्रलयंकारी।
 पाताललोक तक दोनों पांव धँसाए
 उत्तर-दक्षिण सीमा तक कर फैलाए॥
 अंजनगिरि-सा है वर्ण कलूटा, काला
 जिह्वा से निकल रही विद्युत्-सी ज्वाला।
 बिजली की तरह कड़कता, परिघ घुमाता
 गर्जन करता, नक्षत्र-निलय कम्पाता॥
 फणधर-सी छोड़ रहा भीषण फुत्कारें।
 हुर-हुर कर करता डरावनी हुंकारें।
 थर्राया वायु प्रचण्ड पदाघातों से
 नभ हिलने लगा आसुरी संघातों से॥
 लम्बी-लम्बी दंष्ट्राएं हैं करवत-सी
 जो फोड़ डालने में क्षम हैं पर्वत भी।



दिग्-दिगन्त में छाया कुहरिल अंधेरा
आतंकवाद ने जमा लिया है डेरा ॥
मन का कुछ मैल उतर आँखों में आया।
कालिख मिश्रित लाली से भय गहराया ॥

* * *

वह पहुँच स्वर्ग में शेर समान दहाड़ा
जो मिला सामने, उसको वहीं पछाड़ा।
चिंघाड़ों से हिल उठा इन्द्र का आसन
हो गया शिथिल देवालय का अनुशासन ॥
किल्बिषिक देवगण छिपे किसी प्रान्तर में
हो भीत आभियोगिक लुढ़के परिसर में।
सेनापति सह-सेना कर गये पलायन
दिक्पाल, सोम के बंद हुए वातायन ॥
हो गए भूमिगत सभी अंगरक्षक हैं
सुरगुरु, कुबेर, परिजन न पर्यवेक्षक हैं।



प्रस्तुत रहते थे अगणित देव जहां पर,
 अमराधिप एकाकी रह गये वहां पर॥
 वह विद्युत् गति से शीघ्र सभा में आया
 कर-कर उन्मद करतूतें शोर मचाया।
 दक्षिण पग पद्मवेदिका के ऊपर है
 पग धरा सुधर्म सभा में शीघ्र अपर है॥
 आवाज कहीं से दबे स्वरों में आई
 क्यों घटा विपद की स्वर्गलोक पर छाई?
 यह हाय कौन है? और कहां से आया?
 कैसे आया? क्यों आया बिना बुलाया?
 देवेन्द्र कहां है? कोई मुझे बताओ
 होकर मुझसे भयभीत न उसे छिपाओ।
 मैं महाकाल हूं—उसे बताने आया
 मैं नरकपाल हूं—उसे सताने आया॥
 उसकी सुख-सुविधा का अपहरण करूंगा
 चाहे कुछ भी हो जाए मैं न डरूंगा।
 उसने सत्ता-सुख भोग लिया है भारी
 मैं ही वास्तव में हूं जिसका अधिकारी॥
 वह षण्ड, मूढ़ रहने के योग्य न भू पर,
 उसको किसने बैठाया इतना ऊपर?
 उसका परिवार समूचा उससे टूटा
 केवल सन्-सन् सन्नाटा पीछे छूटा॥

* * *

है तू ही देवराज मैंने पहचाना
 अब क्षीणप्राय है तेरा पुण्य खजाना।
 सुनता था संख्यातीत अप्सराएं हैं,
 दे दिखा मुझे—वे दाएं या बाएं हैं?
 अब नहीं एक भी है उनमें से तेरी,
 वे सदा सर्वदा बनी रहेंगी मेरी।
 सुर-सुरांगनाएं, सभा सुधर्मा मेरी,



हट शीघ्र यहां से लगा न बिलकुल देरी।
यह स्वर्ग, स्वर्ग की विपुल सम्पदा मेरी
हट शीघ्र यहां से लगा न बिलकुल देरी।
सुरलोक निवासी जहां कहीं हैं सुन लें—
सब मुझे आज अधिनायक अपना चुन लें॥
अब यहां चमर का ही साम्राज्य चलेगा
यह नियति-अंक है—टाले नहीं टलेगा।
मेरी ही होगी एक छत्र प्रभुसत्ता
इंगित के बिना न हिल पायेगा पत्ता॥
मेरे आधीन रहेंगे अब से सारे
जो जहां कहीं है—वह आज्ञा स्वीकारे।
यदि ननुनच किया किसी ने बिना विचारे
दिन में ही दिखला दूंगा उसको तारे॥
सबका संहार करूंगा तेरे आगे
जायेगा परिकर से तू बिछुड़ अभागे!

* * *

जो शान्ति और सुख का था अनुपम आलय,
विशुद्ध हो उठा सहसा वह देवालय।
कर्कश, कठोर वाणी सुन कर दुखदाई
श्री देवराज ने ऊपर दृष्टि उठाई॥
चौंके आक्रामक तेवर देख चमर के
यह काल-दैत्य क्यों आया साहस करके।
सारा घटनाक्रम अवधिज्ञान से देखा
अज्ञात रह गई कोई कहीं न रेखा॥

* * *



बोले असुराधिप—यह दुस्साहस तेरा?
पहचान सका अस्तित्व न अब तक मेरा?
क्यों जान-बूझकर अपनी मौत बुलाता?
तू भाग यहां से, मैं तुझको समझाता॥
आ गया कृतान्त अब तेरे बहुत निकट है
रे भाग्यहीन, यह तेरा समय विकट है।

है यही मुहूर्त्त शुभ तेरे लिए मरण का
 अवकाश किन्तु देता हूं इष्ट-स्मरण का ॥
 यों कह वज्री ने आयुध वज्र उठाया
 फिर उसे कुलाल-चक्र की तरह घुमाया।
 उसका रव विदीर्ण करता नभ की छाती
 विस्फोटक ध्वनि पर्वत के मूल हिलाती ॥
 यह क्रुद्ध भुजंगम है सहस्र फणधारी?
 या प्रलय-काल की पावक विप्लवकारी?
 संचित समस्त जलनिधियों का वड़वानल
 क्या एक साथ ही प्रकट हो गया अविकल?



इस चकाचौंध में असुरराज चुँधियाया
 संकट की काली घटा देख घबराया।
 'अरहंते सरणं पवज्जामि' कह भागा
 सोया था भय का भूत-अचानक जागा ॥
 सिर नीचे, दोनों पांव हुए हैं ऊपर
 हो गया मुकुट खंडित गिरते ही भूपर।

हाथों के आभूषण गिर गए अधर में
गलसूत्र टूट कर पड़ा किसी गद्दर में ॥

* * *

देने धिक्कार लगे हैं सामानिक सुर
रुकजा, क्यों भाग रहा हो इतना आतुर?
तू अधिपति होकर भी है इतना कायर?
फिर कैसे होंगे आज्ञापालक, अनुचर?
अष्टापद से भिड़ जाता है यदि हाथी
तो यम के बिना न उसका कोई साथी।
मृगछौना मृगपति से यदि लड़ने जाता
तो विपलमात्र में अपने प्राण गँवाता ॥
यदि सांप गरुड़ का चाहे भोजन करना
तो बिना मौत ही पड़ता उसको मरना।
अपनी सीमा का ज्ञान तुझे यदि होता
हो संकट-ग्रस्त न आज इस तरह रोता ॥

* * *



अत्यन्त वेग से संसुमार पुर आया
 ध्यानस्थ खड़े हैं प्रभु-अनुमान लगाया।
 हैं कामधेनु ये चिन्तामणि, नन्दनवन,
 इनके पदतल की माटी भी है चन्दन॥
 इस ज्योतिपुरुष की शरण ग्रहण कर लूंगा,
 मैं संभावित संकट-सागर तर लूंगा।
 सत्वर समेट अपनी ब्रह्माण्डी काया
 लघु जितना बन सकता था, रूप बनाया॥
 प्रभु-चरणों-तले भयातुर खिसक गया है
 अपराध-बोध से लज्जित पूर्णतया है।
 अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है,
 अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है॥
 अरहंत देव ही हैं अब तो रखवारे
 अरहंत देव ही मेरे सबल सहारे।
 अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है,
 अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है॥

* * *

नौका फँस चुकी भँवर के बीच चमर की
 दिल दहल उठा सुन पवि की ध्वनि घर्घर की।
 मेरे पीछे आ रहा ज्वलित उल्का-सा
 अन्यत्र त्राण की है न कहीं भी आशा॥
 पश्चिम, पूर्वा, उत्तर, दक्षिण का कोना
 इस समय न कोई मेरा अपना होना।
 जगवत्सल, दीनानाथ, दया दिखलाओ
 मैं जैसा भी हूँ मुझको आप बचाओ॥
 मैंने था नया स्वप्न-संसार बसाया
 भू-लुण्ठित हुई आज वह सारी माया।
 लूँ बिना आपके अब किसका आलम्बन?
 लगता है मुझे पराया सारा त्रिभुवन॥
 अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है

अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है
अरहंत देव ही हैं अब तो रखवारे,
अरहंत देव ही मेरे सबल सहारे।
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है,
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है॥

* * *

इन्द्रासन लेने की अंतर अभिलाषा,
उस पर छा गया अमित, घनघोर कुहासा।
छब्बेजी बनने को था मन ललचाया
दूबेजी बन कर मर्त्यलोक में आया॥
मिट्टी में मेरा हाथ, निवास हुआ है,
लुक-छिपने में कितना संत्रास हुआ है?
न घर का रहा, न रहा घाट का बिलकुल
हो गया समय विपरीत, समस्या-संकुल॥
अब क्या होगा मेरा हे नाथ बताओ?
मैं जैसा भी हूँ—मुझको आप बचाओ।
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है॥



अरहंत देव ही हैं अब तो रखवारे,
अरहंत देव ही मेरे सबल सहारे।
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है
अरहंते सरणं, अरहंते सरणं है॥

* * *

यह चमर यहां आया तो कैसे आया?
दिव को न कदापि छू सकती इसकी छाया।
कितना सीमित है इसके पास पराक्रम?
अथ से इति तक अज्ञात न मुझसे वह क्रम॥
फड़फड़ा पंख कुक्कुट उड़ान सकता भर
पर संभव है न पहुँचना मेरु-शिखर पर।
सब की अपनी सीमाएं हैं निर्धारित
यह भव मर्यादा पर ही है आधारित।
इसने उल्लंघन किया प्रकृति का कैसे?
यह ज्ञात मुझे करना है जैसे-तैसे॥

* * *

अरिहंत देव का आश्रय लेकर आया?
या श्रमण-शरण ने इसे यहां पहुँचाया?



ऐसा ही है तो मुझसे भूल हुई है
यह प्रतिक्रिया विधि के प्रतिकूल हुई है॥
इतिवृत्त इन्द्रियातीत ज्ञान से जाना
सुरपति ने उचित न समझा देर लगाना।
उत्कृष्ट वेग से निकले देवालय से
अभिभूत हुआ अंतस् आशंका, भय से।
आगे-आगे है पवि, पीछे सुरपति है,
इस समय कल्पनातीत शक्र की गति है॥

* * *

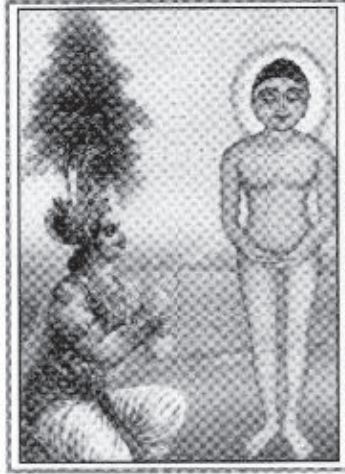
त्रिशला-सुत है घन तम में दिव्य उजारा,
हो जाए घटित अनर्थ न मेरे द्वारा।
यदि लगी चोट प्रभु के लोकोत्तर तन पर,
हे विधि, फिर क्या बीतेगी मेरे मन पर?
गिरने से पहले-पहले अशनि उठाऊँ,
मैं कहीं नियति के हाथों छला न जाऊँ।
यदि हुई इन्द्र के कारण प्रभु को पीड़ा,
तो ब्रीड़ा भी मुंह ढक लेगी कर ब्रीड़ा॥



मेरे कण-कण में है उनके प्रति निष्ठा,
लग चुकी दांव पर मेरी आज प्रतिष्ठा।
हे दैव, लक्ष्य तक मुझे शीघ्र पहुँचाओ,
बन गई पहेली जटिल — इसे सुलझाओ॥

* * *

तड़-तड़ करता पवि पहुँच रहा समीप है,
फिर भी अकंप प्रभुवर का ध्यान-दीप है।
पवि रहा वीर से दूर चार अंगुल जब,
हरि उसे पकड़ पाये आकुल-व्याकुल तब॥
सविनय, बद्धांजलि, विधिपूर्वक कर वन्दन,
बोले हरि — क्षमा करो हे त्रिशलानन्दन।
प्रभु, आशातना हुई है मुझसे भारी,
फिर भी मैं क्षमा मांगने का अधिकारी॥



हे क्षमाश्रमण, हे क्षमाशूर, क्षेमंकर,
हे लोकोत्तम, हे लोकनाथ, अभयंकर,
तृण और त्रिया हैं प्रभु के लिए बराबर
है विश्वबंधु के लिए समान चराचर॥

मणि हो या कंकर नहीं दृष्टि में अन्तर
स्तुति-निन्दा से न प्रभावित समता-सागर।
प्रभु का जीवन पावन गंगा की धारा,
प्रभु का पद-स्पर्शन है भव-सिन्धु किनारा॥
यह महासूर्य-सा तेजस्वी मुख-मण्डल,
दर्शाता है भीतर का तप-संयमबल।
जब जग में चारों ओर तमस् छा जाता,
तब कोई ज्योतिर्धर आ ज्योति जलाता॥
मैं दिव्य ज्योति का अभिनन्दन करता हूँ,
मैं महाज्योति को अभिवन्दन करता हूँ।
हे देव, आपकी जय हो और विजय हो,
हे नाथ, आपका पंथ अरुज, अक्षय हो॥

सुराधिप बोले फिर सक्रोध
चमर, मैं ले न सका प्रतिशोध
छिप गया तू प्रभुवर की छांव
जहां चलता न शक्र का दांव
न कर आंदोलित अपने प्राण,
अभय का देता हूँ वरदान।
अधोगति पर तेरा अधिकार,
मुझे है ऊर्ध्वगमन से प्यार॥

* * *

२४-१०-१९९७

मध्याह्न १२.३४ बजे

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा भवन

रामां मण्डी, पंजाब।

कथासूत्र

भगवान महावीर का साधनाकाल। ग्यारहवां वर्ष। उत्कट तप। अधखुले नयन। अडिग। अडोल। अन्तर्लीन। आत्मारथक। आवेशमुक्त। इन्द्रियजेता। अन्तर्यात्री। आकृति पर अनाविल, अनाकुल अंतस् की झलक। मुखमंडल पर तप-संयम का अनूठा तेज। अनुपम सौन्दर्य के स्वामी। तपे हुए कुन्दन के समान चमकता शरीर। रोम-रोम अध्यात्म के प्रकाश से उद्भासित। सुगन्धित श्वासोच्छ्वास। आलोकमण्डित आभावलय। पवित्रता के पर्याय। वासनाविहीन। आवरणों की परतों को उखाड़ने में नियोजित पुरुषार्थ। कायोत्सर्ग की मुद्रा। अशोक नामक उद्यान। मस्तक पर अशोक वृक्ष की छाया। निर्जल। निराहार। निस्तरंग जलाशय की भांति स्थिर। तेले का तप अंगीकार कर स्फटिक शिलापट्ट पर खड़े भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा का वहन कर रहे हैं प्रभु वर्द्धमान।

संसुमारपुर। श्री, शोभा का आवास। समशीतोष्ण ऋतु सूर्योदय का समय। पृथ्वी को प्रकाशित करने वाला उजास। उल्लसित प्रकृति। प्रफुल्लित प्राची। चहकते-फुदकते पक्षी। मुखर दिङ्मण्डल। सुगन्ध बांटता पवन। लहलहाते वृक्ष। फैली हुई लताएं। उल्लासमय वातावरण। चारों ओर अन्तहीन सुषमा का साम्राज्य मधु एकत्रित करने में जुटी मधुमक्खियां। सौन्दर्य बरसाता हुआ नीलगगन। हरित ओढ़नी ओढ़े हुए धरती। स्निग्ध समीरण से कम्पमान तरुगण। तरुओं के हिलते हुए पत्ते। हरीतिमा का असीम विस्तार। एक पुष्प से उड़ कर दूसरे पुष्प पर बैठती रंग-बिरंगी तितलियां। कुशाग्र पर लम्बमान ओसबिन्दु। उन बिन्दुओं का स्पर्श

करने आती-जाती दिनकर की किरणों। नयनाभिराम दृश्य। भव्य छटा। अनुपम छवि। ऐसा लग रहा था जैसे धरित्री ने अनेक शृंगार एक साथ ही कर लिये हों।

पाताल लोक। चमरचंचा नगरी। असुरों की आश्रयस्थली। इन्द्रासन रिक्त। स्वामी के अभाव में असुरों को अनाथता की अनुभूति। न कोई सभा। न कोई संगीति। न कोई चिन्तन। न कोई मनन। न कोई नई योजना। न कोई शास्ता। न कोई संरक्षक। न कोई आदेश। न कोई निर्देश। सर्वत्र एक अफाट-सी शून्यता।

मर्त्यलोक। विभेल नामक सन्निवेश। पूरण नामक गृहपति। अखूट समृद्धि-सम्पन्न परन्तु मद-अहंकार से अस्पृष्ट। पारभौतिक दृष्टि। आत्मा-परमात्मा में आस्थाशील। अध्यात्म के अभिमुख। आत्मोत्कर्ष के लिए उत्कंठित। मध्यनिशा। जीवन का सिंहावलोकन करते पूरण ने सोचा-आज मुझे अपार धन-सम्पदा उपलब्ध है। परिवार और सन्निवेश का सर्वोपरि आदर-सम्मान मुझे प्राप्त है। मुझसे दिशादर्शन प्राप्त कर सभी निश्चिन्तता का अनुभव करते हैं। मेरा निर्देश सर्वमान्य है। मेरा वचन सबके लिए आदेय है। निस्संदेह यह मेरा पुण्य-प्रसाद है। संचित सत्कर्मों का फल है। जो बीज मैंने बोए थे, उनके परिणामस्वरूप मैं परम प्रसन्न, संतुष्ट, सुखी और तृप्त हूँ। परन्तु आगामी उत्कर्ष के लिए मैंने कोई उपक्रम नहीं किया। भविष्य के लिए मेरे पास कौन-सी सामग्री है? अब मुझे अनागत के निर्माण के लिए भी उद्यत होना चाहिए। गृहस्थाश्रम में शिखरस्पर्शी साधना कम संभव है। मेरा अंतःकरण मुझे प्रेरित करता है कि मैं विशेष तप-अनुष्ठान में संलग्न हो जाऊँ।

उषाकाल का सुहावना समय। पूरण के अंतस् में अभिनव अरुणिमा का अवतरण। ज्ञातिजनों के सम्मुख अपने निर्णय की प्रस्तुति। प्रश्न। समाधान। प्रश्नोत्तरों की शृंखला से मुक्त। क्रियान्वयन की दिशा में गतिशील चरण। ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार सौंप कर 'दानामा' नामक तापसव्रत अंगीकार। प्रतिस्रोत में प्रस्थित। कठोर तपश्चर्या के लिए समर्पित।

आजीवन बेले-बेले तप का संकल्प। साथ-साथ अन्य दुष्कर

संकल्प भी। वह चार खंडों वाला एक काष्ठ-पात्र हाथ में रखता। पारणे (व्रत खोलने) के दिन उस पात्र को हाथ में लेकर मध्याह्न वेला में भिक्षा के लिए निकलता। पात्र के प्रथम खंड में प्राप्त भिक्षा वह पथिकों को बांट देता। दूसरे खंड की भिक्षा कौओं आदि पक्षियों को खिला देता। तीसरे खंड की भिक्षा मछली आदि जलचर जीवों को खिला कर चौथे खंड में पड़ी भिक्षा से पारणा करता। बारह वर्षों तक उसने ऐसा कठोर तप तपा और अंत में एक मास का अनशन कर वह चमरचंचा में असुरकुमारों के इन्द्र-रूप में उत्पन्न हुआ।

चमरेन्द्र ने अपने सहजात अवधिज्ञान (अतीन्द्रिय ज्ञान) से ऊपर की ओर देखा। सौधर्मावतंसक विमान और सौधर्मेन्द्र की अदृष्टपूर्व छटा। विपुल ऐश्वर्य। आकण्ठआप्लावी भौतिक सुख। उच्च सिंहासन की रत्न-रश्मियों से उद्भासित परिसर। विशाल देव परिषद। संसद के इस छोर से उस छोर तक क्रीड़ा करती हर्ष-तरंगें। पूर्व दिशा का अपरिमेय आनन्द पश्चिमान्त तक मन्द होने का वहां कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। उत्तर दिशा के अनुभूतिगम्य आमोद-प्रमोद को शब्दों के सांचे में ढाल पाना किसी के लिए भी संभव नहीं। दक्षिण दिशा के अननुमेय उल्लास, विलास और आह्लाद की मर्त्यलोकवासी कल्पना भी नहीं कर सकते।

सिंहासन पर विराजमान वज्री। अनूठा ठाठ। करबद्ध, विनत खड़े देवगण। विविध प्रकार के वाद्यों से उठती मधुर धुंकार। मनोरम, सुधास्रावी संगीत की स्वर लहरी। अनुपम सौरभयुक्त परिसर। लुभावना दृश्य। पुरन्दर का स्मयमान मुखमंडल। कल्पनातीत सौन्दर्य और नयनाभिराम छवि। चमरेन्द्र उसे देख नहीं सका। उसे सहन नहीं कर सका। वह क्रोधाभिभूत हो गया। स्थिति-बोध के लिए तत्काल उसने अपनी अंतरंग परिषद् को आमंत्रित किया।

आवेशोद्धत भाषा में उसने पूछा—यह दुरात्मा कौन है? मूढ़, गँवार, अमावस्या की रात्रि का साक्षात् अवतार। देखो, कैसे मेरे सिर पर टांगे फैला कर बैठा है। शर्म नहीं आती इसे ऐसे बैठते? इसे

पता नहीं—नीचे कौन बैठा है? मुझे इसकी छांव भी नहीं सुहाती। मैं चाहता हूँ कि इसको कठोरतम दण्ड दे कर इसके अहंकार का चूर्ण बना कर आकाश में उछाल दूँ।

असुरो, मुझे यह राक्षस जैसा प्रतीत होता है। इसकी मुस्कान विकट और तीक्ष्ण कांटे के समान मालूम होती है। मुझे लगता है—इसका विनाश निकट है। मौत से पहले चींटियों के पंख निकल आते हैं। मेरे से ऊपर बैठ कर इसने सर्वनाशी आपदा को निमंत्रण दे दिया है।

असुरो, मैंने भी तप तपा है। सत्कर्म किए हैं। साधना की है। मेरे पास भी शक्ति और सामर्थ्य है। मैं इसके घमण्ड को शतखण्ड करके रहूंगा। देखो, यह मदान्ध कैसे मेरी ओर घूर रहा है? मैं इसको ऐसी रात दिखाना चाहता हूँ—जिसका कभी भी प्रभात नहीं होगा। आदमी जितना क्षुद्र और तुच्छ होता है, उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है। निस्संदेह मैं इसके घमण्ड को चूर करके रहूंगा।

चमरेन्द्र ने भ्रुकुटी तान कर फिर कहा—अनुचरो, मेरे मन में ज्वालामुखी की तरह क्रोध फूट रहा है। मेरे सिर पर सिंहासन ढाल कर बैठना इसे बहुत भारी पड़ेगा। ऐसा लगता है—विधि इसके प्रतिकूल हो गया है। इसका भाग्य देवता इससे रूठ गया है। आप लोग अपनी मौन खोल कर मुझे बताओ—यह दुष्ट दैत्य कौन है? इसकी मुस्कराहट पर अब शीघ्र ही विद्युत्पात होने वाला है।

असुरों ने अपना शीष झुकाया और विनीत स्वर में बोले—देव, आपकी जय-विजय हो। अमंगल अपगत हो। प्रकृति आप पर छत्र-छाया करे। आप चमरचंचा के स्वामी हैं। आपका पुण्य-प्रताप प्रबल है। आपकी वीरतापूर्ण बातें सुनकर हम सभी असुरगण गर्व-गौरव का अनुभव करते हैं। परन्तु हमारे ऊपर जो विराजमान हैं, इनके कर्तृत्व और वैभव को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। इनकी कीर्ति का महासागर से भी अधिक विस्तार है। इनके बल-विक्रम के आगे आप और हम सभी बौने दिखाई देते हैं।

चमरेन्द्र—अरे! असुरो, मेरे सामने शत्रु के सामर्थ्य का इतना

व्याख्यान ? मैं कोई शक्तिहीन, क्लीव और कायर नहीं हूँ। मैं, मेरी शक्ति, मेरे साहस और मेरे पराक्रम से तुम परिचित नहीं हो ? मुझे यह भी लगता है कि तुम लोगों की प्रीति मेरे साथ कम और उसके साथ अधिक है। तुम सभी चुपचाप यहां से निकल जाओ। मैं तुमसे बात करना नहीं चाहता।

असुर-स्वामिन्! मियां की दौड़ मस्जिद तक ही होती है। निवेदन करना हमारा कर्तव्य है। चिन्तन करना आपका कार्य है।

चमरेन्द्र-चमरेन्द्र को चिन्तन के लिए कह रहे हो ? तुम नहीं जानते ? चमरेन्द्र का चिन्तन और कार्य एक साथ ही संपादित होते हैं ? मेरे शौर्य का कुछ अंश जब मैं तुम्हें दिखा दूंगा, तब तुम्हें यह जानने में विलम्ब नहीं लगेगा कि हमारे स्वामी कितने महान हैं।

असुरो, तुम अपनी तर्क-वितर्कों को तिलाञ्जलि दे कर, जो कुछ भी मैं करता हूँ-उससे सहमत होने में ही अपना भला समझो। सेवक की एक मर्यादा होती है। सीमा होती है। उसका कर्तव्य होता है कि स्वामी दो+दो को चार बताता है, तब तो ठीक होता ही है, परन्तु वह पांच भी बता दे तो अनुचर उसे गलत नहीं कह सकता। जो मुझे सपने में भी नहीं सुहाता और जिसको मैं शत्रु मानता हूँ, उसकी गौरव-गाथा गाते तुम्हारा सिर लज्जा से झुक जाना चाहिए। मैं पुनः तुम्हें सावधान करता हूँ-तुम मेरी दृष्टि से परे हट जाओ। मैं शक्रेन्द्र का नाम भी सुनना नहीं चाहता।

असुरो, तुम जिसके शौर्य का अतिशय उल्लेख कर रहे हो वह तुच्छ कीट मेरी कोपाग्नि को एक क्षण भी सहन नहीं कर सकेगा। मेरा दृढ़ संकल्प है कि मैं उसे सत्ता और सिंहासन से च्युत करके रहूंगा। उसकी भुजाओं में कितना बल है-इसका तब पता लगेगा जब मैं उसे एक झटके में ही पछाड़ दूंगा। अगर मेरा पुण्य-प्रताप तुम लोगों को मालूम होता तो तुम मुझे उसका इतना अतिरंजित परिचय नहीं देते। मुझे यह लोकोक्ति सार्थक-सी जान पड़ती है कि दीपक-तले हमेशा अंधेरा रहता है। निस्संदेह पराई थाली में घी अधिक दिखाई देता है। किसमें कितना दम है-अभी मालूम हो जाएगा।

उसके वैभवमय जीवन का अंत अब बहुत ही निकट है। उसे परास्त कर, उसकी श्री-सुषमा का अपहरण कर, सुर-असुर राज्य की सीमा को एक कर, मैं नई व्यवस्था का श्रीगणेश करूंगा। मेरी प्रभु-सत्ता देवालय तक स्थापित होगी। असुरालय और देवालय दोनों लोकों का एक चमरेन्द्र ही इन्द्र (स्वामी) होगा। मेरी अनुमति और इंगित के बिना दोनों लोकों का एक पत्ता भी नहीं हिल सकेगा। तुम्हें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि ये सभी अमर मेरे सेवक कहलाएंगे और मैं इनका स्वामी। शक्रासन को अभी तक कोई छू सका है या नहीं पर मैं (चमरेन्द्र) यह घोषणा करता हूँ कि दोनों लोकों का मैं ही अधिपति हूँ और रहूंगा। असुरो, सहयोग उसे चाहिए—जो कायर होता है। जो साहसहीन होता है। जो भीरु होता है। मुझे किसी सहयोगी और साथी की अपेक्षा नहीं। मैं क्या हूँ—इसका ज्ञान तुम्हें तब होगा, जब मैं देवालय, देवगण और उसके स्वामी का मूल हिला कर रख दूंगा, उन्हें डरा-धमका कर उन सबको वहां से भगा कर शक्रासन पर मैं विराजमान हो जाऊंगा। असुरो, थोड़ी-सी देर प्रतीक्षा करो। यह कार्य निमेष मात्र में ही सम्पन्न होने वाला है। अविलम्ब अभीष्ट सिद्धि सम्प्राप्त होने वाली है।

यों कहते-कहते चमरेन्द्र की आँखों से स्फुलिंग उछलने लगे। वह अपने ही दांतों से अपने होठ चबाता हुआ, पवन पर प्रहार करता हुआ, परिसर को कंपित करता हुआ अपनी आयुधशाला में आया और आक्रामक भावों से अपना परिघ-रत्न उठाया।

विपदा जब विकराल रूप धारण करती है तो उसके लक्षण पहले ही परिलक्षित होने लगते हैं। जैसे—चित्त की चंचलता, अस्थिरता, धड़कन का बढ़ जाना, अपनी छाया से भी डर लगना आदि-आदि।

परिघ उठाते ही चमरेन्द्र के मन में उपरोक्त सभी बातें एक साथ उतर आईं। उसने सोचा—कि ये सभी असुर मुझे हितैषी मालूम होते हैं। इनमें से कोई भी मेरा विद्रोही और विद्वेषी दिखाई नहीं देता। इन्होंने कितना आग्रह और अनुरोध किया है कि स्वामी,

उनके वैभव की अपनी सीमा है और हमारी अपनी। सीमा का अतिक्रमण आपदा को सीधा निमंत्रण है। बिना सोचे-समझे जो आत्मीयजनों से वैर बढ़ा लेता है, वह दुर्दिन में अकेला और असहाय रह जाता है। जब कभी भी दो योद्धाओं ने लड़ाई लड़ी है, एक अवश्य पराजित हुआ है। संयोगवश अगर शक्रेन्द्र से मैं हार गया तो उस समय मैं किसकी शरण ग्रहण करूंगा ?

जिसके कण-कण अध्यात्म-ज्योति से आप्लावित हों। जो सूरज से भी अधिक तेजस्वी और पुण्य-प्रतापी हो। जिसका जीवन त्याग, तप और संयम से भावित हो। जिसका जीवन गंगाजल से भी अधिक पवित्र हो। जो सुख-दुःख, धूप-छांव और विघ्न-बाधाओं में भी शतदल की तरह खिला रहता हो। जो दुखी और दीनों को भी अपनी छांव प्रदान करता हो। जिसकी दुर्भेद्य-दम्भ-प्राचीरें टूट चुकी हों। जो समता का सागर हो। जो ग्रन्थि-भेद करने में सक्षम और समर्थ हो—उस ज्योतिपुरुष की शरण त्राण बन सकती है। परित्राण बन सकती है। आलम्बन और आधार बन सकती है। मुझे ऐसा ही शरण-स्थान खोजना चाहिए।

जो आवेश, अंतर्विग्रह और संक्लेश से मुक्त है। जिसकी पद-रज शीश चढ़ा कर पापी-प्रलापी, हत्यारे और स्वार्थी लोग भी तर जाते हैं। जो जग में रह कर भी जगत-प्रपञ्चों से परे है। जो पथभ्रष्ट पुरुष के लिए ध्रुवतारे के समान पथदर्शक है। जिसकी प्रसन्नता वासनाविहीन है। जन्म-मृत्यु से संतप्त विश्व पर जो अमृत-निर्झर बन कर बहता है। जिसकी आंतरिक ज्योत्स्ना चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से भी अधिक निर्मल है। जो मरु-प्रदेश में भी पारिजात की तरह फलता-फूलता है। जो त्रिभुवन का आलम्बन है। इन्द्रियजेता और अप्रमत्त साधक है। जो देवराज से भी अधिक शक्तिशाली है और कु-समय में मुझे संरक्षण दे सके, ऐसा नर-पुंगव जहां भी है, मेरे लिए उसी पुरुष की शरण-ग्रहण करना श्रेयस्कर है।

चमरेन्द्र ने अपने ज्ञान से चारों ओर देखा—जंबूद्वीप, भरतक्षेत्र, संसुमारपुर और उसके बाहर अशोक उद्यान। उस उद्यान में अशोक

वृक्ष के नीचे एक शिलापट्ट और उस शिलापट्ट पर कायोत्सर्ग में लीन प्रभु महावीर खड़े हैं। जिनके शरीर से प्रतिपल उज्ज्वल, धवल प्रभा उत्सर्जित हो रही है। जिनके नयनों में न उन्मेष है, न निमेष है और न ही अस्थिरता है। मुझे आधार मिल गया! आलम्बन मिल गया! श्रमण वर्धमान की शरण मुझे किसी भी कल्पित और भावी संकट से उबार सकती है, बचा सकती है। त्राण बन सकती है। परित्राण बन सकती है।

त्रिभुवन में त्रिशलानंदन से बढ़ कर दूसरा कोई मेरा संरक्षक हो नहीं सकता। वे मेरे लिए सुरक्षा-कवच के समान हैं। ढाल हैं। इस चिन्तन ने असुराधिप को आश्वस्त कर दिया। उसने देवदूष्य धारण किया। अपना परिघ उठाया और भगवान के चरण-कमलों में विधिपूर्वक वन्दन कर, विनम्रतापूर्वक अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए बोला—‘प्रभो! मैंने आपके चरणों का आश्रय लिया है। आपके आश्रय से अभीष्ट सिद्धि सम्प्राप्त होती है। मैं आपके प्रभाव से इन्द्र को जीत लूंगा। सुर-असुर-राज्य की सीमा एक करके असुरालय और देवालय का स्वामी बन जाऊंगा।’

‘स्वामिन्! आप ऐसे जलाशय हैं—जिसका शीतल जल हंस और बगुले दोनों ही पी सकते हैं। आप ऐसे अतलदर्शी महासागर हैं, जिसके गर्भ में मोती भी पलते हैं और शंख-सीप भी। हे महाप्रभु! आप ऐसे निरभ्र नीलगगन हैं, जिसमें ध्रुवतारा भी चमक सकता है और राहू-केतु को भी आवास उपलब्ध होता है। प्रभो! आप ऐसे सुरभित सुमन हैं जिस पर मधुप मँडराते रहते हैं पर उसके कलेजे में कांटे ओर कीट भी तो छिपे रहते हैं। हे देवाधिदेव! आपको विद्वान लोग धरणीतल से उपमित करते हैं, परन्तु उस पर भी सज्जन और दुर्जन दोनों ही निवास करते हैं। वह सबको अपना अमृततुल्य जल पिलाती है। सभी को फल-फूल, अन्न और वस्त्र प्रदान करती है।’

‘प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप समदर्शी हैं। अंतर्यामी हैं। मैं आपके चरणों में अपनी भावना प्रस्तुत करने के लिए आया हूँ। प्रभो! यह सुरपति, जो मेरे सिर पर पांव फैला कर बैठा है, मुझसे सहन नहीं होता। यह मेरे लिए मर्मन्तुद और हड़कम्पी

पीड़ा है। आप करुणा के सागर हैं। मेरे पर करुणा करो। मेरी इस पीड़ा का निवारण करो। मैं आपकी पद-रज शीश पर चढ़ा कर आपकी साक्षी से असाध्य-साधन करने जा रहा हूँ। शक्र को शोभा-भ्रष्ट करना मेरा प्रमुख लक्ष्य है। आप संकटहारी हैं। मैं आपका पुजारी हूँ। मेरी अभिलाषा अवन्ध्य हो। प्रभु! मेरा यह मनोरथ पूर्ण करो। आपका वरद-हस्त मेरे सिर पर टिका रहे—मैं यह वरदान लेने आया हूँ।’

चमरेन्द्र ने एक लाख योजन का वैक्रिय शरीर बनाया। अपनी आकृति को बहुत विकराल और विद्रूप बना कर प्रभंजन की तरह वहां से चला। अपने पांवों को पाताल लोक तक धँसा कर उत्तर-दक्षिण की दोनों सीमाओं तक दोनों हाथ फैला दिए। अञ्जनगिरि जैसा काला-कलूटा वर्ण। जिह्वा से विद्युत्-सी ज्वाला निकालता हुआ, बिजली की तरह कड़कता हुआ, परिघ को चारों ओर घुमाता हुआ, गर्जन करता हुआ, उछलता हुआ, नक्षत्र-निलय को कम्पाता हुआ, फणधर-सी फुत्कारें छोड़ता हुआ, डरावनी हुंकारें भरता हुआ वह ऊपर की ओर बढ़ने लगा। उसके प्रचण्ड पदाघातों से वायुमण्डल थरा उठा। उसके आसुरी संघातों से नभ हिलने लगा। पर्वत को भी फोड़ डालने में क्षम, होठों से बाहर निकली हुई करवत जैसी लम्बी दंष्ट्राएं, आँखों में कालिमामिश्रित लाली, दिग्-दिगन्त में व्याप्त अंधकार। जो भी सामने मिला, उसे पछाड़ता हुआ वह देवालय में पहुँच गया।

उसकी चिंघाड़ों से इन्द्र का आसन हिल उठा। देवालय का अनुशासन शिथिल हो गया। किल्बिषिक देव कहीं छिप गए। आभियोगिक देव भयभीत होकर लुढ़क गए। सेनापति सेना के साथ पलायन कर गए। दिक्पाल, सोम आदि देवों ने अपने वातायन बन्द कर लिए। अंगरक्षक भूमिगत हो गए। देवगुरु बृहस्पति, कुबेर, परिजन और पर्यवेक्षक आदि कोई भी कहीं दिखाई नहीं देते। केवल दबे स्वरों में कभी-कभी आवाज आ रही थी—‘अरे! यह कौन आ गया? स्वर्गलोक पर यह विपदा की घटा कैसे छा गई?’ जिस देवालय में अगणित देव उपस्थित रहते थे,

अब वहां पर केवल सुरपति ही विराजमान हैं।

चमरेन्द्र विद्युत् वेग से सौधर्म सभा में पहुँच कर उन्मद उत्पात मचाने लगा। अपना एक पैर उसने सौधर्मावतंसक विमान की वेदिका पर और दूसरा पैर सुधर्मा सभा में रखा। अपने शस्त्र से उसने इन्द्रकील पर प्रहार किया और अनर्गल बकवास करने लगा।

उसने अत्यन्त कर्कश भाषा में कहा—‘अरे! यहाँ कौन है? अगर कोई भी कहीं है—तो वह मेरे सामने आए और मुझे बताए कि देवेन्द्र कहां है? लगता है—वह मुझसे भयभीत होकर कहीं छिप गया है। अभी मैंने यह सुना था कि यहाँ कौन आ गया? मैं अपना परिचय प्रस्तुत करता हूँ कि मैं महाकाल हूँ या यों समझ लो कि मैं नरकपाल (यमदूत) हूँ। मैं इन्द्र को आतंकित और दुखी करने के लिए यहाँ आया हूँ। सभी कान खोल कर सुन लें—वह जिस आसन पर बैठा है—वास्तव में उसका अधिकारी वह नहीं, मैं हूँ। जो धरती पर रहने लायक भी नहीं, उसको इस देवलोक के उच्चासन पर किसने बैठा दिया? देवगण अपनी आँखें खोल कर देख लें। उसका परिवार उससे छूट गया है। देवालय में सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है।’

चमरेन्द्र ने फिर जिह्वा से जहर बरसाते हुए कहा—‘अरे! क्या तुझे ही देवराज कहते हैं? तेरा पुण्य-खजाना अब क्षीणप्राय हो गया है। मैं सुनता था—तू संख्यातीत अप्सराओं का स्वामी है। अगर यह सच है—तो तू मुझे उनको दिखा—वे दाएं हैं या बाएं? मैं (चमरेन्द्र) यह घोषणा करता हूँ कि उनमें से एक भी तेरी नहीं है। यह स्वर्ग, स्वर्ग की सम्पदा, सुधर्मा सभा, सुर और सुरांगनाएं आदि जो यहाँ हैं, सब कुछ मेरा है।’ सभी सुरलोकवासी सुन लें—‘अब से पाताललोक और सुरलोक दोनों का अधिपति मैं ही हूँ। अब से दोनों लोकों पर मेरी ही प्रभुसत्ता और साम्राज्य रहेगा। असुर और देव सभी मेरे ही आधीन रहेंगे। नियति के अंक की तरह मेरी आज्ञा को कोई टाल नहीं सकेगा। अगर किसी ने ननुच की तो दिन में ही उसे तारे दिखला दूंगा। मैं उसका अविलम्ब संहार कर डालूंगा। अरे! अभागो! अब तू इन सबसे बिछुड़ जाएगा।’

देवालय, जो सुख-शांति का अद्वितीय स्थान था, सहसा वह विक्षुब्ध हो उठा। चमरेन्द्र की कटु-कर्कश और चुनौतीपूर्ण भाषा सुन कर देवराज ने उसकी ओर देखा। चमर के आक्रामक तेवर देख कर वे चौंके। अवधिज्ञान से सारा घटनाक्रम देखा और जान गए कि यह कालदैत्य यहां क्यों आया है।

शक्रेन्द्र ने सावधान होकर ललकारते हुए कहा—‘अरे चमर! तेरा यह दुस्साहस? क्या तू मुझे नहीं जानता? क्या तू मेरे सामर्थ्य से अनभिज्ञ है? जान-बूझ कर मौत को निमंत्रण देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं होता। तेरा कुशल यहां से भाग जाने में ही है। मुझे लगता है—तेरा समय बहुत विकट और काल बहुत निकट है। अरे भाग्यहीन, तेरी मृत्यु का यही शुभ मुहूर्त है फिर भी इष्ट-स्मरण के लिए तुझे कुछ अवकाश देता हूं।’ यों कह कर इन्द्र ने अपना आयुध (वज्र) उठाया। कुलालचक्र की भांति उसे घुमाया। उस (वज्र) की विस्फोटक ध्वनि से गगन विदीर्ण होने लगा। पर्वतों के मूल हिलने लगे। वह वज्र सहस्र फणधारी क्रुद्ध भुजंगम-सा भयानक, प्रलयकाल की आग-सा विप्लवकारी और महासागर की छाती पर प्रकट होने वाले बड़वानल से भी अधिक भयावह लगने लगा।

वज्र की चकाचौंध में चमरेन्द्र की आँखें चुंधिया गईं। अपने सिर पर संकट की काली घटा और आसन्न मृत्यु देख कर चमरेन्द्र घबरा गया। ‘अरहंते सरणं पवज्जामि’ कह कर वह वहां से भागा। अत्यन्त शीघ्रतावश उसका सिर मर्त्यलोक की ओर (नीचे की ओर) और पांच ऊपर की ओर हो गए। मुकुट भी खंडित होकर कहीं गिर पड़ा। भुजबंध आदि आभूषण हाथों से निकल गए। गलसूत्र टूट कर किसी गड्ढे में जा पड़ा।

चमर की ऐसी दुर्दशा देख कर सामानिक देवों ने कहा—‘चमरेन्द्र! इतना आतुर क्यों हो रहा है? अरे? रुक, थोड़ा-सा रुक। पाताल लोक का अधिपति होकर भी तू इतना कायर है? फिर तेरे आज्ञापालक-अनुचरों की क्या दशा होगी? अगर हाथी अष्टापद से, मृगछौना मृगपति से और सांप गरुड़ से लड़ने का

दुस्साहस करता है तो उसे असमय में ही मरना पड़ता है। अगर तुझे तेरी शक्ति-सीमा का ज्ञान होता तो ऐसी संकट की घड़ी उपस्थित नहीं होती।'

चमरेन्द्र अत्यन्त वेग से संसुमारपुर की ओर भागने लगा। उसने अनुमान लगाया कि भगवान महावीर वहीं ध्यानस्थ खड़े होंगे, जहां से मैंने उनकी शरण-ग्रहण की थी। वे करुणा के सागर, कामधेनु, चिन्तामणि और नन्दनवन के समान हैं। उनकी चरण-रज संतापहारी और आधि-व्याधियों को नष्ट करने वाली है। मैं उस ज्योतिपुरुष की शरण-ग्रहण करके संभावित संकट सागर को पार कर लूंगा।

उसने अपनी ब्रह्माण्डी काया को समेटा और अपनी भयार्त आँखें मूंदे, अपराधी की तरह, 'अरहंते सरणं पवज्जामि, अरहंते सरणं पवज्जामि' कहता हुआ भगवान के चरणों के नीचे प्रवेश कर गया।

चमरेन्द्र—'प्रभो! मुझे इस संकट की घड़ी में केवल आपकी ही शरण है। आपका ही आधार है। चमर की नाव अब भँवर में फँस चुकी है। मेरे पीछे यह वज्र घर्घर की ध्वनि करता हुआ आ रहा है। प्रभो! इस समय इस संसार में कोई भी मेरा अपना नहीं है। आप ही दीनानाथ हैं। जग-वत्सल हैं। करुणा के महासागर हैं। मैं जैसा भी हूँ—आपको मुझे बचाना ही होगा। इस कु-समय और कु-वेला में मुझे मात्र आपका ही आलम्बन है। आप ही मेरे सुरक्षा कवच हैं। 'अरहंते सरणं पवज्जामि, अरहंते सरणं पवज्जामि' हे प्रभो! मैं आपकी ही शरण में हूँ। आप ही मेरे त्राण हैं। रक्षक हैं।'

'मेरी इन्द्रासन ग्रहण करने की अभिलाषा पर घनघोर कुहासा छा गया है। मैं छब्बेजी बनने की इच्छा से ऊपर गया था पर मुझे दूबेजी बनकर नीचे आना पड़ा है। मर्त्यलोक की मिट्टी में लुक-छिपने में मुझे कितना संत्रास हुआ है, मैं ही जानता हूँ। मेरा भाग्य मुझसे विपरीत हो गया है। इस समय मैं न तो घर का रहा, न घाट का। हे नाथ! मुझे आप पर पूर्ण भरोसा है। 'अरहंते सरणं

पवज्जामि, अरहंते सरणं पवज्जामि' हे अर्हत् प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ।'

सौधमेन्द्र ने चिन्तन किया—चमरेन्द्र सुधर्मा सभा तक कैसे पहुँच गया? यहां तक तो यह तब आ सकता है, जब किसी श्रमण, निर्ग्रन्थ या अर्हत् की शरण ग्रहण करे। श्रमण, निर्ग्रन्थ का आश्रय लिये बिना देवलोक के दिव्य प्रांगण को छू पाना इसके वश की बात नहीं है। कुक्कुट पंख फड़फड़ा कर उड़ान तो भर सकता है, पर सुमेरु के शिखर तक पहुँचने की उसमें शक्ति नहीं होती। यह समूचा संसार मर्यादा पर आधारित है। यहां सभी की सीमा निर्धारित है। इसने प्रकृति का उल्लंघन कैसे किया? मुझे पता लगाना चाहिए।

अवधिज्ञान से देवराज ने अविलम्ब जान लिया कि यह प्रभु महावीर की शरण लेकर यहां आया है। हे देव, मुझसे यह भयंकर भूल क्यों हो गई? चमरेन्द्र के पीछे फैंके गए वज्र से कोई अघटित घटित न हो जाए। देवेन्द्र का अंतःकरण अज्ञात आशंका और भय से अभिभूत हो गया। विह्वलमना वे संसुमारपुर की ओर दौड़े। उत्कृष्ट वेग, उत्कृष्ट गति, आगे चमरेन्द्र, पीछे वज्र और उसके पीछे सुरपति। उन्हें चिन्ता यह सता रही थी कि भावी तीर्थंकर के लोकोत्तर तन पर अगर वज्र का आघात लग गया तो मेरे मन पर क्या बीतेगी? प्रभु महावीर तीनों लोकों को ज्योति प्रदान करने वाले हैं। भव-सागर में नौका के समान हैं। अगर उन्हें कोई पीड़ा हुई तो मेरा इन्द्रत्व कलंकित हो जाएगा। मेरी प्रतिष्ठा आज दांव पर लग चुकी है। प्रभो, आपके प्रति मेरी अगाध आस्था है। हे भगवान्! इस जटिल पहेली को सुलझाने में आप मेरा सहयोग करें। मैं कहीं नियति के हाथों छला न जाऊं।

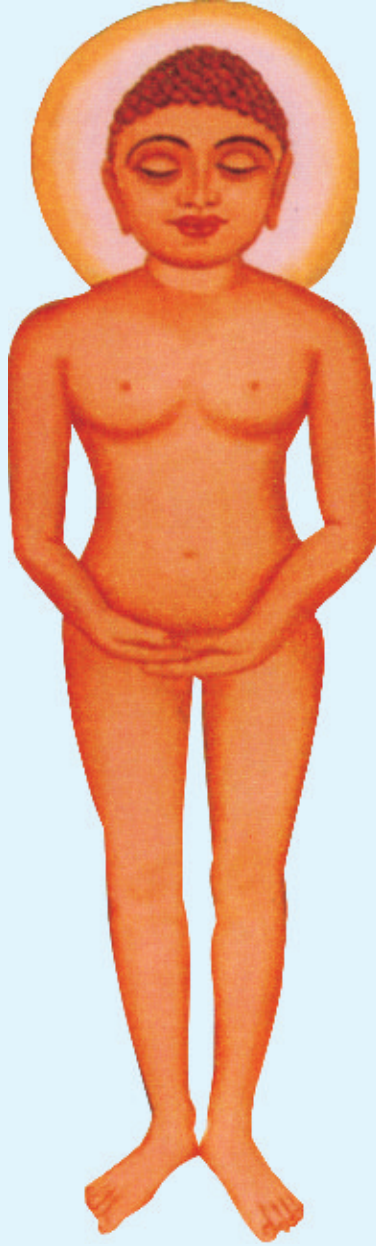
तड़तड़ाहट करता हुआ वज्र भगवान के समीप पहुँचता जा रहा है। प्रभु ध्यानलीन खड़े हैं। भगवान के चरणों से वज्र केवल चार अंगुल दूर रहा, जब इन्द्र ने झपट कर उसे अपने नियंत्रण में कर लिया। एक भयंकर दुर्घटना होते-होते टल गई। सुरपति ने संतोष की सांस ली।

शक्रेन्द्र ने भगवान को विधिपूर्वक वन्दन करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा—‘मेरे द्वारा आपकी भारी आशातना हुई है। परन्तु आप क्षमाशूर हैं। विश्वबन्धु हैं। आपके लिए मणि और कंकर दोनों बराबर हैं। तृण और त्रिया में कोई भेद नहीं है। स्तुति और निन्दा आपके लिए दोनों समान हैं। आपका जीवन गंगा की पावन धारा है। आपका चरणस्पर्श भव-सिन्धु का किनारा है। महासूर्य-सा तेजस्वी मुख-मंडल आपकी तपोजन्य साधना को अभिव्यक्त करता है। जब-जब संसार अंधकार से भर जाता है, तब-तब अवश्य ही कोई ज्योतिर्धर अपने कर में मशाल लिए अवतरित होता है और संसार को आलोकित करता है। मैं इस दिव्य ज्योति का अभिनन्दन करता हूँ। हे नाथ! आपकी जय-विजय हो। आपका पंथ सदैव अरुज और अक्षय रहे।’

सुराधिप ने चमर के अभिमुख होकर कहा—‘चमर तू भगवान के चरणों के नीचे छिप कर बच गया। अब तुझे डरने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुझे अभयदान देता हूँ। तू पाताललोक जा सकता है। क्योंकि अधोगति पर ही तेरा अधिकार है। मैं देवालय की ओर जा रहा हूँ क्योंकि मुझे उर्ध्वगमन से प्रेम है। प्रकृति के कुछ शाश्वत नियम होते हैं, जिन्हें शक्ति और सत्ता से तोड़ा नहीं जा सकता।’

महावीर की साधना की अखण्ड ज्योति, उनके हृदय की पवित्रता और चिन्तन की निर्मलता शिखर के समीप पहुँच रही थी। कोई भी परीषह उन्हें विचलित करने में समर्थ नहीं था। कोई भी उपसर्ग उन्हें आकुल नहीं कर सकता था। परिस्थिति और भय उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते थे। वे समता और सहिष्णुता के अधिष्ठान बन गए थे।

चमरेन्द्र ने देखा—मेरे पीछे शक्र का वज्र आ रहा है। उसे अपने बचाव का कोई मार्ग नहीं सूझा। तत्काल वह अपने शरीर को संकुचित कर भगवान के चरणों के नीचे छिप गया। अब शक्र और शक्र का आयुध उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते थे।



સાધ્વી મોહની